7 वैश्वीकरण (Globalization)

सामान्यत: वैश्वीकरण का अर्थ विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं, विभिन्न समाज व संस्कृतियों में परस्पर अन्त:निर्भरता (Interdependency) का बढ़ना, के रूप में लिया जाता है।

परन्तु वर्तमान वैश्वीकरण की प्रक्रिया में अर्थव्यवस्थाओं की बढ़ती अन्तर्निभरता एक प्रमुख घटना है। अत: भारत में वैश्वीकरण की प्रक्रिया को समझने हेतु इसकी पूर्व-पीठिका के रूप में भारतीय अर्थव्यवस्था को जानना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था की परिस्थितियों ने ही भारत में वैश्वीकरण के प्रसार को स्वरूप प्रदान किया है।

सामान्यत: भौतिक वस्तुओं के उत्पादन, वितरण तथा इनसे जुड़ी अन्य उपव्यवस्थाओं (Sub-System) को समग्र रूप में अर्थव्यवस्था की संज्ञा दी जाती है।

यदि हम अर्थव्यवस्था के उद्विकासक्रम की बात करें तो इसे हम निम्न रूप में देख सकते है:-

1. ***खाद्य संकलन एवं शिकारी अर्थव्यवस्था (Food Gathering & Hunter-gatherer Economy)*** - यह अर्थव्यवस्था का प्राचीनतम स्वरूप है जहाँ लोग जीवन यापन हेतु जंगल से प्राप्त फल व कंद मूल तथा जंगली जानवरों के शिकार पर निर्भर होते थे। यहाँ बाजार व्यवस्था अनुपस्थित होती थी।
2. ***कृषि एवं पशुपालन अर्थव्यवस्था (Agriculture and Animal Husbandry Economy)*** - जब कबीले के रूप में भ्रमणशील व्यक्ति एक जगह टिक के रहने लगे तो कृषि एवं पशुपालन अर्थव्यवस्था का विकास हुआ। इस अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त उत्पादन ने विनिमय व्यवस्था को प्रेरित किया फलत: बाजार एवं मुद्रा का प्रचलन प्रारम्भ हुआ।
3. ***औद्योगिक अर्थव्यवस्था (Industrial Economy)*** - यह अर्थव्यवस्था का आधुनिक स्वरूप है। जब मशीनों द्वारा व्यापक पैमाने पर उत्पादन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई तो औद्योगिक अर्थव्यवस्था का उद्भव हुआ। औद्योगिक अर्थव्यवस्था में आधुनिक मुद्रा प्रणाली एवं बाजार प्रणाली का विकास हुआ।

   आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सामान्यत: 3 मॉडल प्रचलित रहे हैं, जिन्हें हम निम्न रूपों में देख सकते हैं:-

   (a) उदारवादी पूंजीवादी मॉडल (Liberal Capitalist Model) - इस मॉडल में उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर निजी व्यक्तियों का नियंत्रण होता है तथा उत्पादन का उद्देश्य निजी लाभ की प्राप्ति होता है। यह मॉडल मुख्यत: उन समाजों में प्रचलित है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं अहस्तक्षेप की नीति को वरीयता (Preference) प्रदान करते हैं। यदि वर्तमान सन्दर्भ में देखा जाए तो विश्व के अधिकांश देश आज इसी मॉडल के अनुगामी हैं।

   (b) समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialist Economy) - इस मॉडल में उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर राज्य का नियंत्रण होता है तथा राज्य के द्वारा अपने नागरिकों की आवश्यकता पूर्ति हेतु उत्पादन किया जाता है। यह मॉडल विश्व की दूसरी दुनिया के देशों में प्रचलित रहा है। परन्तु वर्तमान में उदारवादी पूंजीवादी मॉडल के बढ़ते प्रभाव ने इस मॉडल के प्रचलन को कम कर दिया है।

   (c) मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) - इस मॉडल में उत्पादन की पूरी प्रक्रिया राज्य एवं राज्य के नियंत्रण में निजी व्यक्तियों द्वारा संचालित होती है। यह मॉडल उपरोक्त दोनों मॉडल का मिश्रित स्वरूप है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् इसी मॉडल को अपनाया गया।

स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप
Nature of Indian Economy before Independence

1. ***कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था (Agricultural Economy)*** - स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था मुख्यत: कृषि प्रधान थी। हमारे सकल घरेलू उत्पाद का 50% से भी अधिक भाग कृषि क्षेत्र से प्राप्त होता था। हमारे देश की 70% से भी अधिक जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर थी।
2. ***कृषि का परम्परागत स्वरूप (Traditional form of Agriculture)*** - स्वतंत्रता से पूर्व भारत तकनीकी पिछड़ेपन के दौर से गुजर रहा था। फलत: हमारे कृषि का भी स्वरूप परम्परागत था। अर्थात् हमारी कृषि सिंचाई के लिए पूर्णत: वर्षा पर निर्भर थी, खेतों की जुताई पशुओं के द्वारा होती था, कम उत्पादक परम्परागत बीजों का प्रयोग होता था और ऋण के लिए किसान सेठ, साहूकारों पर निर्भर थे।

3. *विदेशी निवेशकों के लाभ हेतु औद्योगीकरण (Industrialization for the benefit of Foreign Investors)* – स्वतंत्रता पूर्व काल में अंग्रेजों ने औद्योगीकरण की शुरूआत तो कर दी थी परन्तु इनका उद्देश्य विदेशी निवेशकों को अधिकाधिक लाभ प्रदान करना था। औद्योगीकरण ने यहाँ के परम्परागत कुटीर उद्योगों को नष्ट कर यहीं के कच्चे माल का उपयोग कर तथा सस्ते श्रमिकों का प्रयोग कर विदेशी निवेशकों को अधिकाधिक लाभ प्रदान किया।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के आर्थिक विकास की दशा
State of Economic Development of India after Independence

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत सरकार द्वारा विकास के लक्ष्य का निर्धारण किया गया। इस विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए नियोजित विकास पर बल दिया गया। नियोजित विकास हेतु 1950 में सरकार द्वारा योजना आयोग का गठन किया गया। जिसके द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक विकास का प्रयास किया गया। भारत में आर्थिक विकास हेतु मिश्रित अर्थव्यवस्था के मॉडल को अपनाया गया।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) का निर्माण हैराल्ड डॉमर मॉडल के तहत किया गया, जिसमें कृषि विकास पर विशेष बल दिया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) में महालनोबिस मॉडल को अपनाया गया जिसमें भारी उद्योगों पर बल दिया गया एवं अन्य क्षेत्र में टपकन के सिद्धांत (Trickle-down theory) को स्वीकार किया गया।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में भी विकास युक्ति बुनियादी रूप से वही थी जो दूसरी पंचवर्षीय योजना में थी। बस दोनों में एक मामूली अंतर था। तीसरी पंचवर्षीय योजना में कृषि और औद्योगिक विकास के मध्य संतुलन पर अधिक जोर दिया गया था।

इसी महालनोबिस मॉडल के आधार 1991 तक आर्थिक विकास कि प्रक्रिया क्रियाशील रही।

1960 के दशक में संवृद्धि दर ऊंची होने के बावजूद इस अवधि में आर्थिक संवृद्धि प्रक्रिया की व्यापक स्तर पर आलोचना हुई है। इस संवृद्धि प्रक्रिया की एक मुख्य आलोचना यह है कि इसने देश में समष्टि आर्थिक (Macro Economics) असंतुलन को पैदा किया, इस काल में वित्तीय घाटा (Fiscal Deficit) बहुत बढ़ गया जिससे भुगतान संतुलन पर भारी दबाव पैदा हुआ और देश में मुद्रा स्फीति को बढ़ावा मिला। इसकी दूसरी मुख्य आलोचना यह हुई है कि इसके कारण देश में संसाधनों के उपयोग में कार्य कुशलता का स्तर नीचे आया।

आर्थिक सुधार के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप
Nature of Indian Economy before Economic Reform

महालनोबिस मॉडल के आधार पर निर्मित 1956 के औद्योगिक नीति के अनुसार आर्थिक विकास का प्रयास किया गया। 1956 की औद्योगिक नीति मिश्रित अर्थव्यवस्था के मॉडल पर आधारित थी। अर्थात् इसमें उद्योगों के क्षेत्र को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया था। पहली सूची (क) में 17 आइटम थे जिन्हें सार्वजनिक क्षेत्र हेतु सुरक्षित रखा गया था। दूसरी सूची (ख) में 12 आइटम को रखा गया था। इस सूची में सार्वजनिक क्षेत्र के साथ-साथ नियंत्रण में रहते हुए निजी क्षेत्र को भी अधिकार प्राप्त था। तीसरी सूची (ग) में शेष सभी आइटम थे इस सूची में सम्मिलित आइटम निजी क्षेत्र द्वारा संचालित होते थे एवं राज्य नियंत्रक की भूमिका में क्रियाशील था।

आर्थिक सुधारों से पूर्व औद्योगिक विकास में लाइसेंसिंग प्रणाली को अपनाया गया अर्थात् औद्योगिक इकाईयों की स्थापना से पूर्व सरकार से लाइसेंस लेना अनिवार्य होता था। इस लाइसेंसिंग प्रणाली ने सरकारी लाल फीताशाही एवं भ्रष्टाचार को बढ़ावा देकर औद्योगिक इकाईयों की स्थापना की प्रक्रिया को जटिल एवं दुरूह बना दिया था।

औद्योगिक विकास की प्रक्रिया पर नियंत्रण रखने व उसका नियमन करने के दृष्टिकोण से अक्टूबर 1951 में औद्योगिक विकास एवं विनियमन अधिनियम पारित किया गया। यद्यपि इस अधिनियम का लक्ष्य निजी क्षेत्र का विकास व नियमन था तथापि इसमें अधिकतर नियमन पर जोर दिया गया। इस अधिनियम के निम्न उद्देश्य थे:-

1. भौगोलिक क्षेत्रीय असंतुलन को कम करना।
2. छोटे एवं लघु उद्यमियों को प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्रदान करना।
3. आर्थिक सकेन्द्रण को रोकना। इसके लिए 1969 में एकाधिकार और प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम (MRTP) पारित किया गया, जिसके तहत कोई भी कम्पनी 20 करोड़ से ज्यादा की पूंजी नहीं लगा सकती थी (इसे 1980 में 100 करोड़ कर दिया गया था)।

आर्थिक सुधार से पूर्व काल में हमारी व्यापार एवं निवेश नीति बन्द प्रकार की थी। इसके तहत आयात प्रतिस्थापन की नीति अपनाई जा रही थी अर्थात् आयात की जाने वाली वस्तुओं का देश में ही उत्पादन करके उस वस्तु के आयात को कम करने पर जोर दिया जा रहा था। इस समय विदेशी पूंजी एवं निवेश के प्रति नकारात्मक रूख अपनाया जा रहा था। इसके लिए 1973 में विदेशी मुद्रा विनिमय नियमन अधिनियम (FERA) पारित किया गया। बैंकिंग क्षेत्र में विदेशी कंपनियों के प्रवेश पर रोक थी।

आर्थिक सुधार से पूर्व काल में कठोर राजकोषीय नीति पर बल दिया जा रहा था। जिसके तहत कर ढाँचा जटिल था तथा कर की दर भी ऊँची थी।

इस काल में कठोर श्रम कानूनों के अनुपालन पर बल दिया जा रहा था। इसके लिए औद्योगिक विवाद अधिनियम वेतन अधिनियम व श्रमिक संघ अधिनियम बनाए गए। जिसके द्वारा श्रमिकों की सुरक्षा पर विशेष बल दिया गया।

भारत में आर्थिक सुधार की पृष्ठभूमि
Background of Economic Reforms in India

भारत में जिन आर्थिक समस्याओं ने 1991 में संकट का रूप ले लिया था वे अकस्मात् पैदा नहीं हुई थी। वे काफी वर्षों से अर्थव्यवस्था में मौजूद थी। औद्योगिक विकास के लिए जिस महालनोबिस मॉडल को आधार बनाया गया उसके परिणामस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र घाटे में चला गया। उद्योगों की स्थापना हेतु लागू कठोर लाइसेंसिंग प्रणाली ने निजी क्षेत्र के विकास को बाधित किया। हमने अपनी नीतियों में विदेशी निवेश के प्रति नकारात्मक रूख अपनाया जिसके कारण पूंजी के अभाव से गुजरना पड़ा। परिणामस्वरूप आधारभूत संरचनाओं का पर्याप्त विकास नहीं हो सका व आर्थिक विकास बाधित हुआ। लोककल्याणकारी योजनाओं (Public Welfare Schemes) के क्रियान्वयण तथा पड़ोसी देशों से युद्ध व सुरक्षा खतरों से निपटने हेतु हथियारों की खरीद के लिए आवश्यक पूंजी का अभाव था परिणामस्वरूप इसे विदेशी ऋण द्वारा पूरा किया जा रहा था। 1980 के बाद विदेशी कर्जों में निरंतर वृद्धि हो रही थी। 1989 से 1991 तक दो चुनावों के खर्च के बोझ से भी सरकार की आर्थिक स्थिति कमजोर हो गयी थी। 1990-91 के खाड़ी संकट ने भी भारतीय अर्थव्यवस्था को दुष्प्रभावित किया, क्योंकि खाड़ी संकट ने तेल कीमतों में बेतहाशा वृद्धि की, फलतः भारत के तेल आयात के खर्चों में वृद्धि हुई, परिणामस्वरूप व्यापार घाटे में वृद्धि हुई साथ ही साथ NRI के डिपोजिट में कमी आई जिससे विदेशी मुद्रा भंडार की स्थिति भी कमजोर हुई। इसी समय राजीव गांधी की हत्या तथा दो सरकारों के गिर जाने के कारण भारत राजनीतिक अस्थिरता के दौर से भी गुजर रहा था।

उपरोक्त परिस्थितियों में अंतर्राष्ट्रीय क्रेडिट एजेंसियों के द्वारा भारत की क्रेडिट रेटिंग को गिरा दिया गया फलतः भारत की विदेशी सहायता बाधित हुई और NRI द्वारा अपने डिपॉजिट की तेजी से निकासी की गयी (केवल एक अप्रैल 1991 से मई 1991 के मध्य एक अरब डॉलर की निकासी की गयी) परिणामस्वरूप भारत की विदेशी मुद्रा की स्थिति कमजोर हुई तथा भारत के पास 15 दिन के आयात बिल चुकाने हेतु भी पैसे का अभाव हो गया तथा भारत की स्थिति भी अर्जेंटीना, टर्की व मैक्सिको जैसी हो गयी। हालांकि IMF से तात्कालिक वित्तीय सुविधा के रूप में प्राप्त 180 करोड़ डॉलर से थोड़ी राहत हुई एवं तस्करी से जब्त 20 टन सोना को Union Bank of Switzerland को 20 करोड़ डॉलर में तथा RBI का 47 टन सोना Bank of England तथा Bank of Japan को देकर जुलाई 1991 तक 40.5 करोड़ डॉलर बटोरा गया जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था की साख को बचाया गया। इसके पश्चात् जापान से द्विपक्षीय सहायता के रूप में 20 करोड़ और जर्मनी से 6 करोड़ डॉलर प्राप्त हुआ जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था को गतिशील किया गया। इसके बावजूद स्थिति हमारे नियंत्रण से बाहर होती गयी। परिणामस्वरूप भारत IMF के पास पहुँचा जिसकी परिणति आर्थिक सुधार के रूप में हुई।

आर्थिक सुधार और इसका स्वरूप
Economic Reforms and its Nature

IMF की शर्तों/निर्देशों के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप में जो व्यापक परिवर्तन किए गए उन्हें आर्थिक सुधार की संज्ञा दी जाती है। जिसमें मुख्यतः दो तत्व शामिल थे- प्रथम आर्थिक स्थिरीकरण तथा द्वितीय ढाँचागत समायोजन (Structural Adjustment) समष्टि आर्थिक स्थिरीकरण का संबंध मांग प्रबंधन से है जबकि ढाँचागत समायोजन अर्थव्यवस्था की पूर्ति पक्ष की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करते हैं।

स्थिरीकरण का सिद्धांत (Theory of Stabilisation)

स्थिरीकरण (Stabilisation) का तात्पर्य अल्पकालिक सुधारों के द्वारा अर्थव्यवस्था की यथास्थिति को बनाए रखना होता है। इसके अन्तर्गत मुख्यतः तीन सुधारों पर बल दिया गया:-

1. मुद्रास्फीति के नियंत्रण पर बल
2. राजकोषीय समायोजन पर बल
3. भुगतान संतुलन की समर्थ स्थिति पर बल

1990-91 में मुद्रास्फीति की वार्षिक दर 10% के उपर थी। इसे एक ओर तो मौद्रिक और राजकोषीय अनुशासन के द्वारा और दूसरी ओर उत्पादन और आपूर्ति की स्थितियों में सुधार कर नीचे ला पाना संभव था। जनवरी 1996 में मुद्रास्फीति की वार्षिक दर 5% पर आ गयी। ऐसा जिन कारणों से हुआ वे हैं मुद्रा की मात्रा में धीमी गति से विस्तार, उत्पादन में तेजी के साथ वृद्धि, ईंधन की कीमतों में वृद्धि पर रोक और लागत वृद्धि के बावजूद प्रशासित कीमतों का सरकार द्वारा न बढ़ाना।

मुद्रास्फीति और भुगतान संतुलन में घाटे की समस्याओं के समाधान के लिए राजकोषीय समायोजन अति आवश्यक है। सरकार ने इसके लिए आवश्यक कदम उठाते हुए राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबंधन (FRBM) अधिनियम अपनाया। इसके अंतर्गत राजकोषीय व्यय को नियंत्रित किया गया, सब्सिडी में कटौती तथा सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं यथा बिजली,

पानी, परिवहन, सिंचाई के साधनों पर कर की दरों को बढ़ाया गया। राजकोषीय समायोजन (Fiscal Adjustment) की प्रक्रिया के तहत ही सरकार द्वारा स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति स्कीम (VRS) चालू किया गया।

1991 में भारत में भुगतान संतुलन नाजुक दौर से गुजर रहा था अत: इसका समायोजन आवश्यक हो गया था। इसके लिए सरकार ने विदेशों से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया साथ ही जुलाई 1991 में रुपए का 18-19% अवमूल्यन किया गया। इसके बाद 1992-93 के बजट में उदारीकृत विनिमय दर प्रबन्धन प्रणाली (Liberalised Exchange Rate Management System) अपनाई गयी। इस प्रणाली में दोहरी विनिमय दर प्रणाली अपनायी गयी, जिसके तहत 40 प्रतिशत विदेशी विनिमय को सरकारी कीमत पर देना अनिवार्य था तथा बाकी के 60 प्रतिशत को बाजार दर पर परिवर्तित किया जा सकता था। 1993-94 के बजट में एकीकृत (Unified) विनिमय दर प्रणाली अपनाई गयी। यह बाजार द्वारा निर्धारित विनिमय दर प्रणाली है। इस प्रकार अब भारत में रुपये की विनिमय दर का निर्धारण मुख्यतया बाजार की शक्तियों मांग व पूर्ति के द्वारा होता है न कि सरकारी नीतियों द्वारा। परन्तु बाजार में अत्यधिक उतार चढ़ाव न हो पाए इसलिए रिजर्व बैंक बाजार में हस्तक्षेप करता रहता है।

संरचनात्मक समायोजन का सिद्धांत (Theory of Structural Adjustment)

संरचनात्मक समायोजन (Structural Adjustment) अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन सुधार की प्रक्रिया है। जिसके द्वारा अर्थव्यवस्था में सुदृढ़ता प्रदान की जाती है। इसमें विशेष रूप से अर्थव्यवस्था के पूर्ति पक्ष को ठीक करने के लिए व्यापक ढांचागत सुधार लागू किए गए। भारत में इसके तहत निम्न सुधारों पर बल दिया गया:-

1. ***व्यापार एवं पूंजी प्रवाह में सुधार (Improving trade and Capital flows)*** - इसके लिए जुलाई 1991 में रुपये का लगभग 18-19 प्रतिशत अवमूल्यन (Devaluation) किया गया। जिससे भारतीय निर्यातों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगी बना पाना संभव हुआ। इसके बाद विदेशी व्यापार व्यवस्था पर विभिन्न नियंत्रणों को हटा कर उदारीकरण किया गया, न केवल आयात प्रणालियों को सरल बनाया गया बल्कि अनेक वस्तुओं का आयात लाइसेंसिंग से मुक्त कर दिया गया। विश्व के विभिन्न औद्योगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण मुद्राओं के साथ रुपये की विनिमय दरों में कमी की गयी। इसके साथ ही रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता पर बल दिया गया। अनेक वस्तुओं के आयात और निर्यात पर सरकारी एकाधिकार की समाप्ति की गयी तथा निर्यात के प्रोत्साहन हेतु अनेक कदम उठाए गए, सीमाशुल्क की दर धीरे-धीरे कम की गयी, आर्थिक सुधारों से पूर्व सीमाशुल्क की उच्चतम दर 300 प्रतिशत के ऊपर थी इसे घटाकर 10 प्रतिशत कर दिया गया। सरकार ने विदेशी क्षेत्र में सुधार के अन्तर्गत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) के रूप में पूंजी प्रवाह का उदारीकरण किया। इसके लिए FERA आदि अधिनियमों में संसोधन किया गया। कई सारे क्षेत्रक में स्वत: अनुमोदन मार्ग (Automatic Approval Route) के द्वारा निवेश की अनुमति प्रदान की गयी। अधिकतर क्षेत्रक में निवेश की उच्चतम सीमा को बढ़ा दिया गया। निवेश प्रोत्साहन हेतु (Foreign Investment Promotion Board) की स्थापना की गयी तथा 2005 में एक राष्ट्रीय निवेश कोष की स्थापना की गयी।

2. ***औद्योगिक नियंत्रण को समाप्त करना (Industrial Deregulation)*** – इसके तहत एकाधिकार एवं प्रतिबन्ध व्यापार व्यवहार (MRTP) अधिनियम के अन्तर्गत कम्पनियों के आकार पर पहले लगाई गयी सीमा को अब समाप्त कर दिया गया। इससे औद्योगिक इकाईयों को अनुकूलतम आकार तक विस्तार में सहायता मिली।

   औद्योगिक लाइसेंसिंग प्रणाली को हतोत्साहित किया गया क्योंकि यह व्यवस्था कालांतर में औद्योगिक विकास में एक बड़ी बाधा बन गयी थी, केवल पांच उत्पाद वर्गों को छोड़कर अन्य सभी वस्तुओं के उत्पादन के लिए लाइसेंस की आवश्यकता को समाप्त कर दिया गया। इसके साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत आरक्षित क्षेत्रों की संख्या 17 से घटाकर तीन कर दिया गया। अब लोहा व इस्पात, बिजली, वायु परिवहन, जलयान निर्माण तथा भारी मशीन उद्योग आदि निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए गए। औद्योगिक श्रम कानूनों में भी सुधार किए गए व उनकी कठोरता को अपेक्षाकृत कम कर दिया गया (SEZ में श्रम कानून नहीं)।

3. ***सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार (Public Sector Reforms)*** – सुधार से पूर्व काल में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास यह सोचकर किया जा रहा था कि यह स्वपोषित आर्थिक संवृद्धि के इंजन के रूप में काम करेगा तथा तकनीकी विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र पर्याप्त मात्रा में आंतरिक साधन जनित करने में असमर्थ रहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि यह क्षेत्र आर्थिक संवृद्धि के लिए एक बड़ी बाधा बन गया।

   ढांचागत सुधारों के अन्तर्गत सरकार ने सार्वजनिक उपक्रमों को ज्यादा प्रबन्धकीय स्वायत्ता देने का निर्णय लिया जिससे इनके लिए कुशलतापूर्वक काम कर पाना संभव हो। सार्वजनिक क्षेत्रों के प्रबंधन का व्यवसायीकरण किया गया जिससे प्रबंधन के कुशलता में वृद्धि हो सके।

सार्वजनिक उपक्रमों के कार्य प्रणाली में सुधार हेतु उनको निजी क्षेत्र के साथ खुली प्रतिस्पर्धा का अवसर दिया गया। इसके अलावा कुछ चुने हुए उद्योगों में आंशिक रूप से इक्विटी विनिवेश की नीति को बढ़ावा दिया गया। जिसके अन्तर्गत सार्वजनिक उद्यमों के शेयर वित्तीय संस्थाओं, निजी क्षेत्र तथा आम जनता को बेचे जा रहे हैं।

4. ***बैंकिंग/वित्तीय क्षेत्र में सुधार (Banking/Financial Sector Reforms)*** – बैंकिंग क्षेत्र में सुधार हेतु नरसिंहम समिति गठित किया गया, जिसकी सिफारिशों के आधार पर बैंकिंग सेवा का विस्तार किया गया, बैंकों की कार्यकुशलता, उत्पादकता एवं प्रतिस्पर्धात्मकता में वृद्धि की गयी, निजी बैंकों की स्थापना की अनुमति दी गयी, भारतीय बैंकों में 74% तक विदेशी निवेश की अनुमति दी गयी साथ ही विदेशी बैंकों को भारत में प्रवेश की भी अनुमति दी गयी।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि आर्थिक सुधार के उपरोक्त सभी तरीकों में तीन केंद्रीय तत्वों पर बल दिया गया है।

(i) भारतीय अर्थव्यवस्था में राज्य के हस्तक्षेप को कम करना।

(ii) भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाकलापों हेतु निजी उद्यमियों को प्रोत्साहित करना।

(iii) भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ देना।

वस्तुत: इन्हीं सुधारों को उदारीकरण, निजीकरण व वैश्वीकरण (LPG) की संज्ञा दी गयी।

आर्थिक सुधारों का आर्थिक प्रभाव
Economic Impact of Economic Reforms

अगर हम आर्थिक सुधारों के अर्थिक प्रभाव की समीक्षा करें तो हमें यह कहना पड़ेगा कि जहाँ इसके कई सकारात्मक प्रभाव परिलक्षित हुए हैं वहीं कुछ नकारात्मक प्रभाव भी परिलक्षित हुए हैं। यहाँ सर्वप्रथम हम इसके सकारात्मक प्रभावों की चर्चा करते हैं।

आर्थिक सुधारों का तत्काल प्रभाव मुद्रास्फीति (Inflation) की भयंकर होती स्थिति पर नियंत्रण के रूप में देखा जा सकता है। 1991 में मुद्रास्फीति की दर जहाँ 14 प्रतिशत के आस-पास हो गयी थी वहीं आर्थिक सुधारों के उपरांत इसकी वार्षिक दर 5-6 प्रतिशत के आस-पास आ गयी।

सुधारों के उपरांत राजकोषीय घाटे (Fiscal Deficit) की चिंतनीय स्थिति पर भी काबू पाया जा सका। 1991 में राजकोषीय घाटा जहाँ बढ़कर 8.5-9 प्रतिशत तक चला गया था वहीं सुधारों के पश्चात् घटकर औसतन लगभग 4 प्रतिशत तक आ गया। सरकारी व्यय पर रोक तथा FRBM जैसे अधिनियमों ने राजकोषीय घाटे को सुधारने में मदद की।

आर्थिक सुधारों के उपरांत भुगतान संतुलन की स्थिति में भी सुधार हुआ। मार्च 1991 में भारत के पास विदेशी विनिमय कोष की राशि मात्र 2.2 अरब डॉलर थी जबकि मार्च 2008 के अन्त में यह 309 अरब डॉलर तक पहुँच गयी। भुगतान संतुलन की समस्या से निपटने के लिए निर्यात संवृद्धि पर जोर दिया गया और औसतन 20-25 प्रतिशत संवृद्धि दर को बनाए रखने का प्रयास किया गया।

सुधारों के पश्चात् व्यापार एवं पूंजी प्रवाह में भी सुधार आया। वैश्विक व्यापार में भारत की भागेदारी में वृद्धि की गयी और यह औसतन 1.2-1.4 प्रतिशत के करीब रहा। विदेशी निवेश के अर्न्तप्रवाह में भी तेजी से वृद्धि हुई। इसके लिए FDI की प्रक्रिया को सरल बनाया गया (Automatic Route) तथा विभिन्न नए क्षेत्रक में FDI को मंजूरी दी गयी तथा कई क्षेत्रों में इसकी उच्चतम सीमा में वृद्धि की गयी।

आर्थिक सुधारों के पश्चात् सेवा क्षेत्र को सर्वाधिक फायदा हुआ। IT एवं ITES क्षेत्र ने इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, तथा सेवा क्षेत्र के निर्यात में तेजी से वृद्धि हुई एवं सेवा क्षेत्र हमारे GDP का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग बन गया।

आर्थिक सुधारों ने औद्योगिक विकास को भी तीव्रता प्रदान की। विदेशी निवेश में वृद्धि व तकनीकी हस्तांतरण के फलस्वरूप औद्योगिक उत्पादन में तीव्रता से वृद्धि हुई फलत: वस्तु की उपलब्धता में वृद्धि हुई। औद्योगिक क्षेत्र के विस्तार से कृषि पर जनसंख्या के दबाव में कमी आई साथ ही श्रम का नगरों की ओर तेजी से पलायन हुआ।

सुधारों ने कृषि क्षेत्र में भी आधुनीकरण को बल प्रदान किया। तीव्र औद्योगिक विकास ने कृषि सम्बन्धित आधुनिक मशीनों के उत्पादन को प्रोत्साहित किया, साथ ही कीटनाशक, उर्वरक आदि का भी भारतीय कृषि में व्यापक रूप से प्रयोग होने लगा। आधुनिक मशीनों के प्रयोग ने कृषि हेतु मानवीय श्रम पर निर्भरता को कम किया तथा वाणिज्यिक एवं द्वि-फसली खेती के प्रचलन में वृद्धि हुई। सामान्य भूमि में भी पहले से अधिक उत्पादन होने लगा तथा बंजर भूमि आदि का भी कृषि भूमि के रूप में विस्तार हुआ। कृषि क्षेत्र के उत्पादन में वृद्धि एवं श्रम शक्ति में सुधार के फलस्वरूप किसानों की आय में वृद्धि हुई।

उपरोक्त सभी आर्थिक प्रभावों के सम्मिलित प्रभाव से भारतीय अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण हुआ एवं समग्र आर्थिक विकास में वृद्धि हुई। 1991 में भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास दर जहाँ 3.5 प्रतिशत थी वहीं इसके बाद की अवधि में यह बढ़कर औसतन 8.0% हो गयी। भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में उभरी। भारतीय

अर्थव्यवस्था में उभार के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि हुई जिससे गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में कमी आई (40% से घटकर 26%) तथा लोगों के जीवन स्तर में सुधार हुआ। साक्षरता दर में वृद्धि एवं स्वास्थ्य स्तर में सुधार के फलस्वरूप मानव विकास सूचकांक भी बेहतर हुआ। मध्यम वर्ग का विकास हुआ व लोगों की जीवन शैली में भी आधुनिकता का प्रभाव परिलक्षित होने लगा।

परन्तु उपरोक्त विश्लेषण के पश्चात् यह समझना अतार्किक होगा कि आर्थिक सुधार के परिणामस्वरूप सब कुछ सकारात्मक ही हुआ। इसके कई **नकारात्मक** परिणाम भी दृष्टिगोचर हुए जिसे हम निम्न रूपों में देख सकते हैं:–

आर्थिक सुधारों के पश्चात् FDI में तो अवश्य ही वृद्धि हुई परन्तु इसका पूरा फायदा नहीं उठाया जा सका क्योंकि यह प्रत्यक्ष निवेश निर्यात उन्मुखी नहीं है।

औद्योगिक विकास तो हुआ परन्तु लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास उपेक्षित रहा है। सेवा क्षेत्र का तो आशानुरूप विकास हुआ परन्तु कृषि क्षेत्र की उपेक्षा हुई। कृषि में 4 प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य था जो अभी तक प्राप्त नहीं किया जा सका।

सुधारों के उपरान्त विकास तो हुआ, परन्तु इस विकास ने क्षेत्रीय विषमता (Regional Disparity) को भी उत्पन्न किया। महाराष्ट्र, तमिलनाडु, हरियाणा आदि राज्य विकास के लाभ लेने में आगे रहे, परन्तु बिहार, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों का अपेक्षित विकास नहीं हो पाया। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में तो वृद्धि हुई परन्तु इसका लगभग 80% हिस्सा मात्र 5 विकसित राज्यों (गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, दिल्ली) में ही रहा।

आर्थिक सुधार का अधिकतर लाभ नगरों को प्राप्त हुआ, फलतः नगरीय एवं ग्रामीण विषमता में वृद्धि हुई और उदारीकरण के लाभ से गांव के किसान प्रायः वंचित रहे।

सुधार के उपरान्त रोजगार के अवसरों में अपेक्षित सफलता नहीं मिल पायी और रोजगार वृद्धि दर में तथा रोजगार के कुल अवसरों में भी गिरावट आयी।

आर्थिक सुधारों ने आर्थिक विषमता में भी वृद्धि की क्योंकि इसने पूंजी संकेन्द्रण को बढ़ावा दिया। अमीर अधिक अमीर होते गए तथा गरीबों की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया।

औद्योगिक विस्तार तथा श्रम का शहरों की ओर पालायन के परिणामस्वरूप अति नगरीकरण एवं नगरीय क्षेत्र का फैलाव हुआ, जिसने कई समस्याओं को जन्म दिया तथा इससे कृषि भूमि में भी कमी आयी।

✪✪✪✪✪